International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2016; Page No. 44-46

सत्ता और सामंत को चुनौती देती स्त्री संघर्षों की आवाज़ मीरा (सन्दर्भ : रंग राँची)

शशांक मिश्र

शोध–छात्र, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

'स्त्री अस्मिता के लिए मीराबाई का प्रतिरोध उनके समय में जितना कण्टकाकीर्ण था, आज भी स्त्रियों के लिए कोई कम चुनौती–भरा नहीं है। आज भी सामाजिक मान्यताएँ एवं अवधारणाएँ स्त्री को पुरूष से बराबरी करने में अनेक बाधाएँ खड़ी करती रहती हैं। मीराँ जिस सामन्ती युग में जन्मीं पलीं–बढ़ीं और ब्याही गयीं वह परम्पराओं और मर्यादाओं के बन्धन में स्त्री को पूरी तरह से जकड़े हुए था।' राजस्थान के मेड़ता नाम स्थान के एक छोटे से गांव में पैदा हुई यह लड़की घोर सामंतवादी समाज में एक हलचल मचा देगी, एक विशाल बहुभाषी जनसमाज की हृदय–साम्राज्ञी बनेगी और अंततः आधुनिक युग की एक प्रबल विचारधारा 'स्त्रीवाद' (Feminism) के लिए और 'स्त्री साहित्य' के लिए ऊर्जा, कर्मठता, संकल्प–शक्ति का प्रतीक बनेगी यह किसी ने कभी सोचा भी न होगा। 'रंगराँची' अपने स्वरूप में विस्तृत एवं इतिवृत्तातमकता को समेटे, कृष्ण आलम्बन के आवरण में मीरा द्वारा पूरे मध्यकालीन जड़ सामन्ती समाज का कदम–कदम प्रतिरोध एवं स्त्री–मुक्ति आकांक्षा की ऐतिहासिक महागाथा है।

शोध–पत्र

भारतीय परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक और साहित्यिक रूप से मध्यकाल का बहुत महत्त्व है। यह वही समय है जब साहित्य में भक्तिकाल के बहाने पूरे भारतीय समाज में एक नये मूल्य स्थापित हो रहे थे, जिसमें मनुष्य को मनुष्य के रूप में तलाशा जा रहा था, वहीं इतिहास में तमाम छोटे–छोटे राजघरानों को विजित कर मुगल साम्राज्य की स्थापना हो रही थी। यह दोनो ही घटनायें भारतीय समाज के चाल–चरित्र को बदलने में अहम भूमिका अदा कर रही थीं। साहित्य में जहाँ भक्तों/सन्तों ने किसी आलम्बन के आवरण में सही, अपनी बात कर रहे थे, वहीं मुगलों के आने से एक ऐसे कामगार वर्ग का उत्थान हो रहा था, जो आर्थिक रूप से सक्षम था और साथ ही निम्न जातियों से सम्बद्ध भी था। इसी परिदृश्य में भक्तिकाल में एक आवाज़ मीराबाई की भी थी। जिसे विभिन्न विद्वानों ने स्त्री–अस्मिता के बड़े पैरोकार के रूप में पहचाना। यह पहचान कोई झूठी पहचान नहीं थी। जहाँ मध्यकाल पूरी तरह से सामन्ती ताकतों के गिरफ्त में था, वहीं एक स्त्री पूरी मुखरता के साथ उसका प्रतिरोध कर रही थी। सामन्ती समाज में कुलीन जातियों के समक्ष निम्न जातियों के पुरूष भी आवाज़ नहीं उठा पाते थे, वहाँ मीरा ने आवाज़ ही नहीं उठाई बल्कि ''सिसोद्यौ रूठ्यो तो म्हारो कांई कर लेसी''[1] की घोषणा कर दी। इसी मीरा पर विभिन्न आलोचकों, विद्वानों, साहित्यकारों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से विचार किया है। इसी क्रम में हालिया प्रकाशित उपन्यास सुधाकर अदीब कृत 'रंग राची' भी सम्मिलित है। यह उपन्यास मीरा के विभिन्न पदों पर आधारित 18 उपशीर्षकों में विभाजित है। जो मीरा के विभिन्न आयामों को स्पष्ट करता है। यह उपन्यास मीरा के लोक प्रचलित एवं ऐतिहासिक दोनों कहानी के संगम प्रयास पर आधारित है। मीरा का विवाह चित्तौड़ के युवराज भोजराज के साथ हुआ और मीरा ने अल्प आयु में वैधव्य को प्राप्त किया, जिसके पश्चात् खुलेआम मीरा ने घोषणा कर दी ''मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई''[2]। यह स्त्री के मुक्ति महाकांक्षा की स्पष्ट घोषणा भी थी, मेरा मन जिसे चाहे, उसे में वरण करूँ, इसके बीच कोई दूसरा नहीं की भी अस्पष्ट आवाज़ सुनाई देती है। मीरांबाई 16वीं सदी के भक्ति आंदोलन के वाङ्मय की एक महत्वपूर्ण रचनाकार थी। 'स्त्री' मीरांबाई बीसवीं–इक्कीसवी सदी के स्त्रीवादी आंदोलन की एक महत्वपूर्ण रोल–मॉडल–आदर्श है। मीरां का भक्तिभाव उसके स्त्रीत्व का ही एक आयाम है और मीरां ने अपने स्त्रीत्व को–अस्मिता को हर कीमत पर बचाये रखा है और उसके लिए बड़े से बड़े सत्ता केंद्रों को, पितृसत्तात्मक समाज के, वर्चस्ववाद के विभिन्न रूपों को चुनौती दी है। जगदीश्वर चतुर्वेदी, मीरा बाई को मध्ययुग की सबसे महत्वपूर्ण कवयित्री बताते हुए कहते हैं– ''भक्ति और माधुर्य तत्व के माध्यम से मीरा ने लिंगीय भेदभाव और सामाजिक वैषम्य दोनों को चुनौती दी। स्त्री के सामाजिक अधिकारों, खासक स्त्री के मन एवं तन पर स्त्री के स्वामित्व की वकालत करने वाली वह पहली भारतीय लेखिका है। इसी अर्थ में वह स्त्रीवादी भी है।''[3]

इसी तरह की आवाज़ों को सुनने का एक वृहद प्रयास सुधाकर अदीब कृत 'रंग राची' में किया गया है। इस उपन्यास में प्रतिरोध एवं संघर्षों की एक लम्बी दास्तां को व्यापक एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा गया है। मीरा ''एक ऐसी स्त्री थी जो कि एक राजकुल में जन्मीं और दूसरे राजकुल में ब्याही गयीं। उन्होंने सामन्ती व्यवस्था का वैभव और तिरस्कार दोनों भोगा, सहा और उसे तृण सम त्याग दिया।''[3] मीरा ने इसी सामन्ती और शोषक व्यवस्था का निरन्तर प्रतिरोध किया। पुरूष छोटा हो या बड़ा कभी किसी स्त्री की अधीनता या डाँट–फटकार सुनना कभी पसन्द नहीं, क्योंकि सदैव उसका पुरूष गर्व जग जाता है, जब कि स्त्रियों को सदैव पैर की जूती बनाये रखना पसन्द करते हैं। राज कुँवर विक्रमादित्य द्वारा साधू–सन्तों को परेशान करने पर अपने भाभी सा मीरा से हल्की से डाँट खाने पर अपने को कुम्भा महल में बन्द कर लेते हैं। ''मीराँ भाभी ने कैसे उस बाहरी आदमी के सामने मुझे डाँटा? कहाँ वह भिखारी? और कहाँ मैं राजकुँवर ?..''[5] जैसी सामन्ती सोच रखते है। इस पूरे प्रकरण में अन्ततः मीरा दासी चम्पा से स्पष्ट कह देती हैं, ''कह दिया न..... नहीं आ सकती। जो करना हो कर लें।''[6]

आगे मीरा गिरिधर गोपाल से अपनी मनोदशा को एक मात्र आलम्बन के बहाने व्यक्त कर रही हैं, जब कि सच यह है कि किसी प्रकार पुरूष समाज एक वैधव्य प्राप्त स्त्री को ताने–दे–देकर मार देना चाहता है। ''सुना है कि लोग कहते हैं मैं अपने सुहाग को खा गयी। कितना घिसा–पिटा मुहावरा है यह? यह एक स्त्री का अपने सुहाग को खा जाना। कोई यह क्यों नहीं कहता कि सुहाग स्त्री को खा गया ?.... एक विवाहित पुरूष खाता ही तो रहता है अपनी स्त्री को सारा जीवन... तिल–तिल कर... पल–प्रतिपल... सोखता रहता है वह अपनी ब्याहता स्त्री को... उसके तन–मन को... उसकी समस्त सारी युवनाई को... उसके समस्त सौन्दर्य को...उसकी समस्त ऊर्जा को... इच्छाओं को... और कुचलता रहता है उसके समूचे अस्तित्व को... उसके मान को... सम्मान को उसके वर्तमान

को... और फिर यदि वह इस संसार को पहले छोड़कर चल दिया तो ध्वस्त कर जाता है वह स्त्री के भविष्य को.....।''[7] मीरा का यह मनोसंवाद, उनकी पूरी चेतना, संघर्ष और वैधव्य जीवन की मार्मिक कहानी के साथ–साथ प्रतिरोध के बयान को भी दर्ज करता है। आज भी समाज इससे बहुत आगे निकल नहीं पाया है। आज कभी किसी व्यक्ति को घर से किसी कार्यवश बाहर निकलना पड़ जाता है तो इसी दौरान कोई वैधव्य प्राप्त स्त्री सामने आ जाए तो व्यक्ति सम्मुख गाली न दे पाये तो उसके पीछे अवश्य वैधव्य को गाली देता है, क्योंकि उसने धारणा बना रखी है कि सामने आने से अशुभ हो गया अब कोई कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। वह यह कतई नहीं सोचता है, उसका जीवन तो वैसे ही संकटग्रस्त है, वह दूसरे को क्या संकट में डालेगी।

मीरा का वैधव्य के पश्चात् कृष्ण के शरण में जाने को भी सामन्ती राज परिवार पचा नहीं सका। सुधाकर अदीब ने धनाबाई के बरक्स इस पर सवाल किया है कि ''इसमें आखिर बुराई क्या है?..... क्या एक स्त्री को अपने दुःख कष्टों के निवारण हेतु ईश्वर की शरण में जाने का भी अधिकार नहीं?''[8] मध्यकालीन सामन्ती पुरूष समाज मीरा को इसकी अनुमति नहीं देता इसमें उसके कुल का मान–सम्मान गिरता है। कृष्ण आराधक मीरा कृष्ण के गुणगान आम–जन मानस में करती हैं, तो राजदरबार को ठेस लगती है, क्योंकि राजदरबार कभी जनता के लिए सोचता ही नहीं कि वह भी मनुष्य है, वही रक्त–मज्जा उनके शरीर में है, सत्ता सदैव ही उन्हें निकृष्ट कीड़े–मकौड़े की मानिन्द समझती रही है। तो मीरा का उनसे राग रखना कहाँ पसन्द आता। चित्तौड़ के विजय–स्तम्भ के दर्शन के समय मीरा कहा एक वाक्य उनकी आकांक्षा को स्पष्ट करता है, ''कहने दो! जिसे जो कहना हो कहे। मीराँ को किसी का डर नहीं पड़ा है.....इन वृक्षों की शाखाओं पर तोतों और मैनाओं को देखो... मीराँ इन्हीं की तरह उन्मुक्त रहना चाहती है...।''[9] इसी उन्मुकत्तता की तलाश जीवन भर रही मीरा को, जब उस बन्धन से मुक्त होती हैं मीरा, तो फिर कभी उस बन्धन को स्वीकारा भी नहीं। मीरा चित्तौड़ से निकली तो फिर कभी वापस आने के बारे में सोचा नहीं। शायद मीरा यही सोचती रहीं है कि आजाद मीरा को अब बन्धन स्वीकार..... नहीं लौटना है चित्तौड़ के राणा वंश में।

मीरा का संघर्ष अस्मिता का संघर्ष था, जिसके लिए मीरा निरन्तर प्रयासरत थी। मीरा ने स्पष्ट घोषणा कर दी थी, ''नहीं बनना ऐसी 'सती माता' मुझे..... क्योंकि अव्वल तो मैं इस गर्हित प्रथा से सहमत ही नहीं हूँ जो सारा जीवन घर–गृहस्थी और देहबन्धन में खटनेवाली स्त्री पर जुल्म की हद है..... मैं इसे बिल्कुल स्वीकार नहीं कर सकती और यही नहीं..... मेरा मानना है कि इसे किसी भी समझदार स्त्री को स्वीकार नहीं करना चाहिए।''[10] सती प्रथा के विरूद्ध मीरा का यह संघर्ष मध्यकाल के समय कितना कठिन और दुरूह रहा होगा, इसी से सोचा जा सकता है कि तमाम जन जागरण, कानून के पश्चात् भी सन् 1987 में रूप कँवर जैसी घटना उसी राजस्थान में घट जाती है, अखबारों की सुर्खियाँ बनती है। उन्हीं कुप्रथाओं में से बाल–विवाह सब कुछ के बाद भी राजस्थान की सच्चाई है। मीरा आगे भी कहती है, स्वेच्छा से शायद ही कोई सती हुआ हो या तो जबरदस्ती या अफीम के नशे में वेदी पर बैठा कर फूँक दिया गया हो। इसी के साथ ही स्पष्ट उद्घोष कर देती है कि ''अब मैं भी मुक्त हूँ।..... मैं तो पहले भी कान्हा जी की ही ब्याहता थी और आज भी उन्हीं की ब्याहता हूँ और सदा रहूँगी।''[11] इसी के साथ ही मीरा समाज के समक्ष एक सवाल भी उछाल देती है कि ''यदि सती हो जाना पतिव्रता होने का प्रतीक है तो यह पुण्य व्रत एक तरफा क्यों? फिर किसी स्त्री के काल कवलित हो जाने पर उसके पति महाशय भी उसकी चिता के साथ क्यों नहीं आत्मदाह कर लेते? जीवन भर साथ देने वाली पत्नी भी तो जीवन संगिनी ही होती है।''[12]

'स्त्री को पुरूष सत्ता बार–बार नियति चक्र में ढकेलती है। उसे अपनी परिस्थितियों से समझौता करने पर बाध्य करती है। कभी पिता कभी पति तो कभी पुत्र या फिर कोई और दूसरा।'[13] पुरूष सत्ता सदा नियन्ता के रूप में अपने को चाहा, भारतीय धर्मशास्त्रों ने भी स्पष्ट व्यवस्था दी है कि स्त्रियाँ सदैव पुरूषों के अधीन रहें, चाहे जिस रूप में। लेकिन मीरा ने इस अधीनता को भोजराज के रहने पर भी स्पष्ट कह दिया था, पहले गिरिधर गोपाल, इसके बाद आप।

उपन्यास के एक संवाद जिसमें मीरा विष्णुगुप्त को प्रत्युत्तर दे रही है, शिक्षित हुए बिना व्यक्ति न तो स्वयं का विकास कर सकता है और न ही आने वाली पीढ़ियों का। स्त्री–शिक्षा की दशा तो हमारे समाज में और भी सोचनीय है। स्त्री शिक्षा की दशा–दिशा आज भी सोचनीय है। पुरूष कितना लोलुप होता है, उसे स्त्री के संवेदना, उसकी सोच किसी से भी मतलब नहीं होता है, उसे हर स्त्री वस्तु के रूप में नज़र आती है। मीरा के प्रति भी सामन्ती राणा विक्रमादित्य यही सोचता है, उनके साथ समागम चाहता है, विष्णुगुप्त के द्वारा संदेश भेजता है। विष्णुगुप्त, राणा के सन्देश के साथ ही अपना समागम सन्देश भी सुना देता है। मीरा इस प्रस्ताव को भरे सन्त समाज में कृष्ण के बहाने कहती भी है। एक स्त्री से पुरूष समाज कितना भयभीत रहता है? मीरा के जनमानस में भारी समादर को देखकर राणा चिन्तित रहता है, सदैव यही सोचता रहता है कि कहीं मीरा जनमानस में लोगों के बीच विद्रोह की चिंगारी न बो दे। इसी का प्रतिफल रहा कि मीरा को मारने के लिए सर्पदंश, जहर आदि के द्वारा विभिन्न प्रयास किए जाते रहे। स्त्री–अस्मिता को रौंदने के लिए समाज विभिन्न प्रयास करता है, कभी घर–परिवार के बहाने, राज परिवार के मान–सम्मान के बहाने। इसमें असफल रहने पर चरित्र हनन, दोषारोपण आदि के बहाने। वहीं राणा मीरा को समागम और रानी बनाने के लिए सन्देश भेजता है, वहीं राणा विक्रमादित्य इसमें असफल रहने पर परपुरूष से समागम का आरोप लगाता है। इन सब के बावजूद मीरा निरन्तर उस सामन्ती समाज को चोट देती रहीं। ''सत्ता के प्रतिनिधि के रूप में 'राणा' संभवतः उसे पूजा–पाठ करने, भक्ति की मर्यादित (कुलीन) परंपराओं, ईश्वर को याद करने की पूरी छूट देता है परंतु उसे मीरा की स्वतंत्रता से गहरी आपत्ति है। मीरा यदि सिर्फ भक्त होतीं तो 'राणा' से उनका टकराव संभवतः टल जाता, परंतु चूंकि वे स्त्री थीं और कुलीनतावादी मर्यादाओं और विधानों से बाहर जाकर परपुरुषों के साथ नाच–गानवाले सत्संगों में शामिल होना चाहती थीं इसलिए यह टकराव टाला न जा सका। कहना न होगा कि टकराव के पीछे 'भक्ति' नहीं है, है स्वतंत्रता की कामना। सो, मीरा की कविता (और जीवन में) मौजूद यह संघर्ष, सदियों से टाले जा रहे स्वतंत्रता संघर्ष की पहली अनुगूंज है।''[14]

सिमोन ने कहा कि स्त्री की स्वतंत्रता के लिए आर्थिक स्वतंत्रता जरूरी है। शायद मीरा भी इस लिए चित्तौड़ को त्याग कर भ्रमण करते हुए अपनी आकांक्षा–इच्छा को उद्घोषित कर सकीं क्योंकि उन्हें ''सांगा ने मेड़तणी मीराँ बहू के लिए लाखों की वार्षिक आमदनी वाली 'पुर' तथा 'मांडल' की जागीर उसके नाम लिख दी।''[15] ''स्त्री अस्मिता के लिए मीराबाई का प्रतिरोध उनके समय में जितना कण्टकाकीर्ण था, आज भी स्त्रियों के लिए कोई कम चुनौती–भरा नहीं है। आज भी सामाजिक मान्यताएँ एवं अवधारणाएँ स्त्री को पुरूष से बराबरी करने में अनेक बाधाएँ खड़ी करती रहती हैं। मीराँ जिस सामन्ती युग में जन्मीं पलीं–बढ़ीं और ब्याही गयीं वह परम्पराओं और मर्यादाओं के बन्धन में स्त्री को पूरी तरह से जकड़े हुए था।''[16] राजस्थान के मेड़ता नाम स्थान के एक छोटे से गांव में पैदा हुई यह लड़की घोर सामंतवादी समाज में एक हलचल मचा देगी, एक विशाल बहुभाषी जनसमाज की हृदय–साम्राज्ञी बनेगी और अंततः आधुनिक युग की एक प्रबल विचारधारा 'स्त्रीवाद'

(Feminism) के लिए और 'स्त्री साहित्य' के लिए ऊर्जा, कर्मठता, संकल्प–शक्ति का प्रतीक बनेगी यह किसी ने कभी सोचा भी न होगा।

निष्कर्षतः यह उपन्यास अपने स्वरूप में विस्तृत एवं इतिवृत्तातमकता को समेटे, कृष्ण आलम्बन के आवरण में मीरा द्वारा पूरे मध्यकालीन जड़ सामन्ती समाज का कदम–कदम प्रतिरोध एवं स्त्री–मुक्ति आकांक्षा की ऐतिहासिक महागाथा है।

सन्दर्भ सूंची

1. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली,सं0 2008, पृ0 134
2. रंग राची, सुधाकर अदीब, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं0 2015, पृ0 11
3. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, जगदीश्वर चतुर्वेदी, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रब्यूटर्स (प्रा) लिमिटेड, नयी दिल्ली, सं0 2011, पृ0 70
4. रंग राची, सुधाकर अदीब, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं0 2015, पृ0 07
5. रंग राची, सुधाकर अदीब, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं0 2015, पृ0 16
6. रंग राची, सुधाकर अदीब, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं0 2015, पृ0 17
7. रंग राची, सुधाकर अदीब, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं0 2015, पृ0 19–20
8. रंग राची, सुधाकर अदीब, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं0 2015, पृ0 31
9. रंग राची, सुधाकर अदीब, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं0 2015, पृ0 51
10. रंग राची, सुधाकर अदीब, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं0 2015, पृ0 64
11. रंग राची, सुधाकर अदीब, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं0 2015, पृ0 65
12. रंग राची, सुधाकर अदीब, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं0 2015, पृ0 80
13. रंग राची, सुधाकर अदीब, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं0 2015, पृ0 147
14. रंग राची, सुधाकर अदीब, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं0 2015, पृ0 71
15. मीरां : एक मूल्यांकन, अरुण चतुर्वेदी श्याम प्रकाशन, जयपुर, सं0 2006, पृ0 140
16. रंग राची, सुधाकर अदीब, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं0 2015, पृष्ठ फ्लैप से